॥ श्री सुधर्मास्वामीने नमः ॥

अहो ! श्रुतम् - स्वाध्याय संग्रह [१०]

वैराग्यशतक

इन्द्रिय पराजय शतक

[गाथा और अर्थ]

-: प्रकाशक :-

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभंडार

साबरमती, अहमदाबाद

॥ श्री सुधर्मास्वामीने नमः ॥

अहो ! श्रुतम् - स्वाध्याय संग्रह [१०]

वैराग्यशतक
इन्द्रिय पराजय शतक

[गाथा और अर्थ]

कर्ता :- अज्ञात पूर्वाचार्य महर्षि

अनुवादक :- पू.आ. रत्नसेनसूरिजी

-: संकलन :-

श्रुतोपासक

-: प्रकाशक :-

श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभण्डार

शा. वीमळाबेन सरेमल जवेरचंदजी बेडावाळा भवन

हीराजैन सोसायटी, साबरमती, अमदाबाद-३८०००५

Mo. 9426585904

email - ahoshrut.bs@gmail.com

प्रकाशक : श्री आशापूरण पार्श्वनाथ जैन ज्ञानभण्डार

प्रकाशन : संवत २०७४

आवृत्ति : प्रथम

ज्ञाननिधि में से
पू. संयमी भगवंतो और ज्ञानभण्डार को भेट...
गृहस्थ किसी भी संघ के ज्ञान खाते में
३० रुपये अर्पण करके मालिकी कर सकते हैं।

प्राप्तिस्थान :

(१) सरेमल जवेरचंद फाईनफेब (प्रा.) ली.
672/11, बोम्बे मार्केट, रेलवेपुरा, अहमदाबाद-३८०००२
फोन : 22132543 (मो.) 9426585904

(२) कुलीन के. शाह
आदिनाथ मेडीसीन, Tu-02 शंखेश्वर कोम्पलेक्ष, कैलाशनगर, सुरत
(मो.) 9574696000

(३) शा. रमेशकुमार एच. जैन
A-901 गुंदेचा गार्डन, लालबाग, मुंबई-१२.
(मो.) 9820016941

(४) श्री विनीत जैन
जगद्गुरु हीरसूरीश्वरजी जैन ज्ञानभण्डार,
चंदनबाला भवन, १२९, शाहुकर पेठ के पास, मीन्ट स्ट्रीट, चेन्नाई-१
फोन : 044-23463107 (मो.) 9389096009

(५) शा. हसमुखलाल शान्तीलाल राठोड
७/८ वीरभारत सोसायटी, टीम्बर मार्केट, भवानीपेठ, पूना.
(मो.) 9422315985

मुद्रक : विरति ग्राफिक्स, अहमदाबाद, मो. **8530520629**
Email Id: Virtigrafics2893@gmail.com

वैराग्यशतक

संसारम्मि असारे, नत्थि सुहं वाहि-वेअणा-पउरे ।
जाणंतो इह जीवो, न कुणइ जिणदेसियं धम्मं ॥१॥

अर्थ : व्याधि-वेदना से प्रचुर इस असार-संसार में लेश भी सुख नहीं है...यह जानते हुए भी जीवात्मा जिनेश्वर भगवन्त द्वारा निर्दिष्ट धर्म का आचरण नहीं करता है ॥१॥

अज्जं कल्लं परं परारिं, पुरिसा चिंतंति अत्थसंपत्तिं ।
अंजलिगयं व तोयं, गलंतमाउं न पिच्छंति ॥२॥

अर्थ : आज मिलेगा...कल मिलेगा...परसों मिलेगा । इस प्रकार अर्थ / धन की प्राप्ति की आशा में रहा मनुष्य अंजलि में रहे हुए जल की भाँति क्षीण होते आयुष्य को नहीं देखता है ॥२॥

जं कल्ले कायव्वं, तं अज्जं चिय करेह तुरमाणा ।
बहुविग्घो हु मुहुत्तो, मा अवरण्हं पडिक्खेह ॥३॥

अर्थ : जो धर्मकार्य कल करने योग्य है, उसे आज ही शीघ्र कर लो । मुहूर्त्त (काल) अनेक विघ्नों से भरा हुआ है, अतः अपराह्न पर मत डालो ॥३॥

ही संसार-सहावं, चरियं नेहाणुरागरत्ता वि ।
जे पुव्वण्हे दिट्ठा, ते अवरण्हे न दीसंति ॥४॥

अर्थ : अहो ! संसार का स्वभाव कैसा है ? जो पूर्वाह्न

में स्नेह के अनुराग से रक्त दिखाई देते हैं...वे अपराह्न में वैसे दिखाई नहीं देते हैं ॥४॥

मा सुअह जग्गियव्वे, पलाइयव्वंमि कीस वीसमेह ? ।
तिण्णि जणा अणुलग्गा, रोगो अ जरा अ मच्चू अ ॥५॥

अर्थ : जाग्रत रहने योग्य धर्म-कर्म के विषय में सोओ मत। नष्ट होने वाले इस संसार में किसका विश्वास करोगे ? रोग, जरा और मृत्यु ये तीन तो तुम्हारे पीछे ही लगे हुए हैं ॥५॥

दिवस-निसा-घडिमालं, आउं सलिलं जियाण घेत्तूणं ।
चंदाइच्चबइल्ला, कालऽरहट्टं भमाडंति ॥६॥

अर्थ : चन्द्र और सूर्य रूपी बैलों से जीवों के आयुष्य रूपी जल को दिन और रात रूपी घट में ग्रहण कर काल रूपी अरहट जीव को घुमाता है ॥६॥

सा नत्थि कला तं नत्थि, ओसहं तं नत्थि किं पि विन्नाणं ।
जेण धरिज्जइ काया, खज्जंती कालसप्पेण ॥७॥

अर्थ : ऐसी कोई कला नहीं है, ऐसी कोई औषधि नहीं है, ऐसा कोई विज्ञान नहीं है, जिसके द्वारा काल रूपी सर्प के द्वारा खाई जाती हुई इस काया को बचाया जा सके ॥७॥

दीहरफणिंदनाले, महियरकेसर दिसामहदलिल्ले ।
उअ-पियइ कालभमरो, जणमयरंदं पुहविपउमे ॥८॥

अर्थ : खेद है कि दीर्घ फणिधर रूपी नाल पर पृथ्वी

रूपी कमल है, पर्वत रूपी केसराए और दिशा रूपी बड़े-बड़े पत्र हैं, उस कमल पर बैठकर कालरूपी भ्रमर सतत जीव रूपी मकरन्द का पान कर रहा है ॥८॥

छायामिसेण कालो, सयलजियाणं छलं गवेसंतो ।
पासं कह वि न मुंचइ, ता धम्मे उज्जमं कुणह ॥९॥

अर्थ : हे भव्य प्राणियो ! छाया के बहाने सकल जीवों के छिद्रों का अन्वेषण करता हुआ यह काल (मृत्यु) हमारे सामीप्य को नहीं छोड़ता है, अतः धर्म के विषय में उद्यम करो ॥९॥

कालंमि अणाईए, जीवाणं विविहकम्मवसगाणं ।
तं नत्थि संविहाणं, संसारे जं न संभवइ ॥१०॥

अर्थ : अनादिकालीन इस संसार में नाना कर्मों के आधीन जीवात्मा को ऐसा कोई पर्याय नहीं है, जो संभवित न हो ॥१०॥

बंधवा सुहिणो सव्वे, पियमायापुत्तभारिया ।
पेयवणाउ नियत्तंति, दाऊणं सलिलंजलिं ॥११॥

अर्थ : सभी बान्धव, मित्र, पिता, माता, पुत्र, पत्नी आदि मृतक के प्रति जलांजलि देकर श्मसानभूमि से वापस अपने घर लौट आते हैं ॥११॥

विहडंति सुआ विहडंति बंधवा वल्लहा य विहडंति ।
इक्को कहवि न विहडइ, धम्मो रे जीव ! जिणभणिओ ॥१२॥

अर्थ : हे आत्मन् ! इस संसार में पुत्रों का वियोग होता

है, बन्धुओं का वियोग होता है, पत्नी का वियोग होता है, एक मात्र जिनेश्वर भगवन्त के धर्म का कभी वियोग नहीं होता है ॥१२॥

अडकम्मपासबद्धो, जीवो संसारचारए ठाइ ।
अडकम्मपासमुक्को, आया सिवमंदिरे ठाइ ॥१३॥

अर्थ : आठ कर्म रूपी पाश से बँधा हुआ जीव संसार की कैद में रहता है और आठ कर्म के नाश से मुक्त हुआ जीव मोक्ष में जाता है ॥१३॥

विहवो सज्जणसंगो, विसयसुहाइं विलासललियाइं ।
नलिणीदलग्गघोलिर–जललव परिचंचलं सव्वं ॥१४॥

अर्थ : वैभव, स्वजनों का संग, विलास से मनोहर सुख–सभी कमल के पत्र के अग्रभाग पर रहे जलबिंदु की भांति अत्यन्त ही चंचल हैं ॥१४॥

तं कत्थ बलं तं कत्थ, जुव्वणं अंगचंगिमा कत्थ ? ।
सव्वमणिच्चं पिच्छह, दिट्ठं नट्ठं कयंतेण ॥१५॥

अर्थ : शरीर का बल कहाँ गया ? वह जवानी कहाँ चली गई । शरीर का सौंदर्य कहाँ चला गया ? काल इन सभी को तहस नहस कर देता है, अतः सब कुछ अनित्य है, ऐसा समझो ॥१५॥

घण कम्म पास बद्धो, भवनयर चउप्पहेसु विविहाओ ।
पावइ विडंबणाओ, जीवो को इत्थ सरणं से ॥१६॥

अर्थ : गाढ़ कर्म रूपी पाश से बँधा हुआ जीव इस संसार रूपी नगर की चार गति रूप मार्ग में अनेक प्रकार की विडंबनाएँ प्राप्त करता है, यहाँ उसको शरण देनेवाला कौन है ? ॥१६॥

घोरंमि गब्भवासे, कमलमलजंबालअसुइ बीभच्छे ।
वसिओ अणंतखुत्तो, जीवो कम्माणु भावेण ॥१७॥

अर्थ : कर्म के प्रभाव से यह जीव वीर्य और मल रूपी कीचड़ की अशुचि से भयानक ऐसे गर्भावास में अनंतीबार रहा है ॥१७॥

चुलसीई किर लोए, जोणीणं पमुहसयसहस्साइं ।
इक्किक्कंमि अ जीवो, अणंतखुत्तो समुपन्नो ॥१८॥

अर्थ : इस संसार में जीव को उत्पन्न होने के लिए चौरासी लाख योनियाँ हैं । इन सब में यह जीव अनंती बार पैदा हुआ है ॥१८॥

मायापियबंधूहिं, संसारत्थेहिं पूरिओ लोओ ।
बहुजोणिनिवासीहिं, न य ते ताणं च सरणं च ॥१९॥

अर्थ : इस संसार में रहे हुए और चौरासी लाख योनि में बसे हुए माता-पिता व बंधु द्वारा यह लोक भरा हुआ है, परंतु रक्षण करनेवाला या शरण देनेवाला कोई नहीं है ॥१९॥

जीवो वाहि विलुत्तो, सफरो इव निज्जले तडप्फडइ ।
सयलो वि जणो पिच्छइ, को सक्को वेयणाविगमे ॥२०॥

अर्थ : रोगों से आक्रान्त यह जीव जल बिन मछली की भाँति तड़पता है, तब सभी स्वजन उसे रोग से पीड़ित देखते हैं फिर भी कोई भी उस वेदना को दूर करने में समर्थ नहीं होता है ॥२०॥

मा जाणसि जीव ! तुमं पुत्त कलत्ताइ मज्झ सुहहेउ ।
निउणं बंधणमेयं, संसारे संसरंताणं ॥२१॥

अर्थ : हे जीव ! तू यह मत मान ले कि इस संसार में पुत्र, स्त्री आदि मुझे सुख के कारण बनेंगे । क्योंकि संसार में भ्रमण करते हुए जीवों को पुत्र-स्त्री आदि तीव्र बंधन के ही कारण बनते हैं ॥२१॥

जणणी जायइ जाया, जाया माया पिया य पुत्तो य ।
अणवत्था संसारे, कम्मवसा सव्वजीवाणं ॥२२॥

अर्थ : इस संसार में कर्म की पराधीनता के कारण सभी जीवों की ऐसी अनवस्था है कि माता मरकर पत्नी बनती है, पत्नी मरकर माता बनती है और पिता मरकर पुत्र बनता है ॥२२॥

न सा जाइ न सा जोणी, न तं ठाणं न तं कुलं ।
न जाया न मुया जत्थ, सव्वे जीवा अणंतसो ॥२३॥

अर्थ : इस संसार में ऐसी कोई जाति नहीं, ऐसी कोई योनि नहीं, ऐसा कोई स्थान नहीं, ऐसा कोई कुल नहीं, जहाँ सभी जीव अनंत बार जन्मे और मरे न हों ॥२३॥

तं किं पि नत्थि ठाणं, लोए वालग्गकोडिमित्तं पि ।
जत्थ न जीवा बहुसो, सुहदुक्खपरंपरं पत्ता ॥२४॥

अर्थ : इस संसार में बाल के अग्र भाग के जितना भी स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ इस जीव ने अनेक बार सुख-दुःख की परंपरा प्राप्त न की हो ॥२४॥

सव्वाओ रिद्धिओ, पत्ता सव्वे वि सयण संबंधा ।
संसारे ता विरमसु, तत्तो जइ मुणसि अप्पाणं ॥२५॥

अर्थ : संसार में सभी प्रकार की ऋद्धियाँ और स्वजन संबंध प्राप्त किये हैं, अतः यदि तो आत्मा को जानता है, उनके प्रति रहे ममत्व से विराम पा जा ॥२५॥

एगो बंधइ कम्मं, एगो वहबंधमरणवसणाइं ।
विसहइ भवंमि भमडइ, एगुच्चिय कम्मवेलविओ ॥२६॥

अर्थ : यह जीव अकेला ही कर्मबंध करता है । अकेला ही वध, बंधन और मरण के कष्ट सहन करता है । कर्म से ठगा हुआ जीव अकेला ही संसार में भटकता है ॥२६॥

अन्नो न कुणइ अहियं, हियं पि अप्पा करेइ न हु अन्नो ।
अप्पकयं सुहदुक्खं, भुंजसि ता कीस दीणमुहो ? ॥२७॥

अर्थ : अन्य कोई जीव अपना अहित नहीं करता है और अपना हित भी आत्मा स्वयं ही करती है, दूसरा कोई नहीं करता है । अपने ही किए हुए कर्मों को - सुखदुःख

को तू भोगता है, तो फिर दीन मुखवाला क्यों बनता है ? ॥२७॥

बहु आरंभविढत्तं, वित्तं विलसंति जीव सयणगणा ।
तज्जणियपावकम्मं, अणुहवसि पुणो तुमं चेव ॥२८॥

अर्थ : हे जीव ! बहुत से आरंभ समारंभ से उपार्जित तेरे धन का स्वजन लोग भोग करते हैं परंतु उस धन के उपार्जन में बंधे हुए पापकर्म तुझे ही भोगने पड़ेंगे ॥२८॥

अह दुक्खियाइं तह भुक्खियाइं जह चिंतियाईं डिंभाईं ।
तह थोवं पि न अप्पा, विचिंतिओ जीव ! किं भणिमो ॥२९॥

अर्थ : हे आत्मन् ! तुमने "मेरे बच्चे दुःखी हैं, भूखे हैं ?" इस प्रकार की चिंता की, परंतु कभी भी अपने हित की चिंता नहीं की ? अतः अब तुझे क्या कहें ? ॥२९॥

खणभंगुरं शरीरं, जीवो अन्नो य सासयसरूवो ।
कम्मवसा संबंधो, निब्बंधो इत्थ को तुज्झ ? ॥३०॥

अर्थ : यह शरीर क्षणभंगुर है और उससे भिन्न आत्मा शाश्वत स्वरूपी है। कर्म के वश से इसके साथ संबंध हुआ है, अतः इस शरीर के विषय में तुझे मूर्च्छा क्यों है ? ॥३०॥

कह आयं कह चलियं, तुमं पि कह आगओ कहं गमिही ।
अन्नुन्नं पि न याणह, जीव ! कुडुंबं कओ तुज्झ ? ॥३१॥

अर्थ : हे आत्मा ! यह कुटुंब कहाँ से आया और कहाँ जाएगा ? तू भी कहाँ से आया और कहाँ जाएगा ? तुम

दोनों परस्पर यह जानते नहीं हो तो यह कुटुंब तुम्हारा कहाँ से ? ॥३१॥

खणभंगुरे सरीरे, मणुअभवे अब्भपडल सारिच्छे ।
सारं इत्तियमेत्तं, जं किरइ सोहणो धम्मो ॥३२॥

अर्थ : बादल के समूह समान इस मानवभव में और क्षणभंगुर इस देह के विषय में जो अच्छा धर्म हो, इतना ही मात्र सार है ॥३२॥

जम्मदुक्खं जरादुक्खं, रोगा य मरणाणि य ।
अहो ! दुक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो ॥३३॥

अर्थ : जन्म दुःखदायी है, वृद्धावस्था दुःखदायी है, संसार में रोग और मृत्यु हैं । अहो ! यह संसार ही दुःख रूप है जहाँ प्राणी पीड़ा का अनुभव करते हैं ॥३३॥

जाव न इंदिय हाणी, जाव न जररक्खसी परिप्फुरइ ।
जाव न रोगवियारा, जाव न मच्चू समुल्लियइ ॥३४॥

अर्थ : जब तक इन्द्रियों की हानि नहीं हुई, जब तक वृद्धावस्था रूपी राक्षसी प्रगट नहीं हुई, जब तक रोग के विकार पैदा नहीं हुए और जब तक मृत्यु नहीं आई है, तब तक हे आत्मा ! तू धर्म का सेवन कर ले ॥३४॥

जह गेहंमि पलित्ते, कूवं खणिउं न सक्कए कोइ ।
तह संपत्ते मरणे, धम्मो कह कीरए जीव ॥३५॥

अर्थ : हे जीव ! घर में आग लगी हो तब कोई कुआँ

खोदने के लिए समर्थ नहीं होता है, उसी प्रकार मृत्यु के नजदीक आने पर तू धर्म कैसे कर सकेगा ? ॥३५॥

रूवमसासयमेयं विज्जुलया-चंचलं जए जीयं ।
संझाणुरागसरिसं, खणरमणीयं च तारुण्णं ॥३६॥

अर्थ : यह रूप अशाश्वत है। विद्युत् के समान चंचल अपना जीवन है। संध्या के रंग के समान क्षण मात्र रमणीय यह यौवन है ॥३६॥

गयकण्णचंचलाओ, लच्छीओ तियस चावसारिच्छं ।
विसयसुहं जीवाणं, बुज्झसु रे जीव ! मा मुज्झ ॥३७॥

अर्थ : हाथी के कान की तरह यह लक्ष्मी चंचल है। जीवों का विषयसुख इन्द्रधनुष के समान चपल है। हे जीव! तू बोध पा और उसमें मोहित न बन ॥३७॥

जह संझाए सउणाण संगमो जह पहे अ पहियाणं ।
सयणाणं संजोगा, तहेव खणभंगुरो जीव ! ॥३८॥

अर्थ : हे जीव ! संध्या के समय में पक्षियों का समागम और मार्ग में पथिकों का समागम क्षणिक है, उसी तरह स्वजनों का संयोग भी क्षणभंगुर है ॥३८॥

निसाविरामे परिभावयामि, गेहे पलित्ते किमहं सुयामि ।
डज्झंतमप्पाणमुविक्खयामि, जं धम्मरहिओ दिअहा गमामि ॥३९॥

अर्थ : रात्रि के अन्त में मैं सोचता हूँ कि जलते हुए घर में मैं कैसे सोया हुआ हूँ ? जलती हुई आत्मा की मैं क्यों

उपेक्षा करता हूँ ? धर्म रहित दिन प्रसार कर रहा हूँ ! ॥३९॥

जा जा वच्चइ रयणी, न सा पडिनियत्तइ ।
अहम्मं कुणमाणस्स, अहला जंति राइओ ॥४०॥

अर्थ : जो-जो रातें बीत जाती हैं, वे वापस नहीं लौटती हैं । अधर्म करनेवाले की सभी रातें निष्फल ही जाती हैं ।

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्स वत्थि पलायणं ।
जो जाणइ न मरिस्सामि, सो हु कंखे सुए सिया ॥४१॥

अर्थ : जिसे मृत्यु से दोस्ती है अथवा जो मृत्यु से भाग सकता है अथवा जो यह जानता है कि मैं मरनेवाला नहीं हूँ, वही सोच सकता है कि मैं कल धर्म करूँगा ॥४१॥

दंड कलियं करिंता, वच्चंति हु राइओ अ दिवसा य ।
आउसं सविलंता गयावि न पुणो नियत्तंति ॥४२॥

अर्थ : हे आत्मन् ! दंड से उखेड़े जाते हुए सूत्र की तरह रात और दिन आयुष्य को उखेड़ रहे हैं, परन्तु बीते हुए वे दिन वापस नहीं लौटते हैं ॥४२॥

जहेह सीहो व मियं गहाय, मच्चू नरं णेइ हु अंतकाले ।
ण तस्स माया व पिया व माया, कालंमि तंमि सहरा भवंति ॥४३॥

अर्थ : जिस प्रकार यहाँ सिंह मृग को पकड़कर ले जाते हैं, उसी प्रकार अंत समय में मृत्यु मनुष्य को पकड़कर

ले जाती है । उस समय माता-पिता, भाई आदि कोई सहायक नहीं होते हैं ॥४३॥

जीअं जलबिंदु समं, संपत्तीओ तरंगलोलाओ ।
सुमिणयसमं च पिम्मं, जं जाणसु तं करेज्जासु ॥४४॥

अर्थ : यह जीवन जलबिंदु के समान है। सारी संपत्तियाँ जल की तरंग की तरह चंचल हैं और स्वजनों का स्नेह स्वप्न के समान है, अतः अब जैसा जानो, वैसा करो ॥४४॥

संझराग जल बुब्बुओवमे,
जीविए य जलबिंदुचंचले ।
जुव्वणे य नइवेग संनिभे,
पाव जीव ! किमियं न बुज्झसे ? ॥४५॥

अर्थ : संध्या के समान राग, पानी के परपोटे और जलबिंदु के समान यह जीवन चंचल है और नदी के वेग के समान यह यौवन है । हे पापी जीव ! फिर भी तू क्यों बोध नहीं पाता है ? ॥४५॥

अन्नत्थ सुआ अन्नत्थ गेहिणी परियणो वि अन्नत्थ ।
भूयबलिव्व कुडुंबं, पक्खितं हयकयंतेण ॥४६॥

अर्थ : अहो ! निंदनीय ऐसे कृतान्त ने भूत को फेंकी गई बलि की तरह पुत्र को अन्यत्र, पत्नी को अन्यत्र और परिजनों को अन्यत्र, इस प्रकार पूरे परिवार को छिन्न-भिन्न कर दिया है ॥४६॥

जीवेण भवे भवे मिलियाइं देहाइं जाइं संसारे ।
ताणं न सागरेहिं, कीरइ संखा अणंतेहिं ॥४७॥

अर्थ : इस संसार में इस जीव ने भवोभव में जो शरीर प्राप्त किए हैं, उनकी संख्या अनंत सागरोपम से भी नहीं हो सकती है ॥४७॥

नयणोदयं पि तासिं, सागर सलिलाओ बहुयरं होइ ।
गलियं रुयमाणीणं, माउणं अन्नमन्नाणं ॥४८॥

अर्थ : अन्य-अन्य जन्मों में रोती हुई माताओं की आँखों में से जो आँसू गिरे हैं, उसका प्रमाण सागर के जल से भी अधिक हो जाता है ।

जं नरए नेरइया, दुहाइं पावंति घोरणंताइं ।
तत्तो अणंतगुणियं, निगोयमज्झे दुहं होइ ॥४९॥

अर्थ : नरक में नारक जीव जिन घोर भयङ्कर अनन्त दुःखों को प्राप्त करते हैं, उससे अनन्तगुणा दुःख निगोद में होता है ॥४९॥

तंमि वि निगोअ मज्झे, वसिओ रे जीव ! विविह कम्मवसा ।
विसहंतो तिक्खदुहं, अणंत पुग्गल परावत्ते ॥५०॥

अर्थ : हे जीव ! विविध कर्मों की पराधीनता के कारण उस निगोद के मध्य में रहते हुए अनंत पुद्गल परावर्त काल तक तीक्ष्ण दुःखों को तूने सहन किया है ॥५०॥

निहरीअ कह वि तत्तो, पत्तो मणुयत्तणं पि रे जीव ।
तत्थ वि जिणवर धम्मो, पत्तो चिंतामणि सरिच्छो ॥५१॥

अर्थ : हे जीव ! किसी भी प्रकार से वहाँ से निकलकर तूने मनुष्यपना को प्राप्त किया और उसमें भी चिंतामणि रत्न के समान जिनेश्वर का धर्म तुझे प्राप्त हुआ ॥५१॥

पत्ते वि तंमि रे जीव ! कुणसि पमायं तुमं तयं चेव ।
जेण भवंध कूवे पुणो वि पडिओ दुहं लहसि ॥५२॥

अर्थ : हे जीव ! वह श्रेष्ठ धर्म प्राप्त होने पर भी तू पुनः वही प्रमाद करता है कि जिसके फलस्वरूप इस संसार रूपी अन्ध कुएँ में गिरकर दुःख को प्राप्त करेगा ॥५२॥

उवलद्धो जिणधम्मो न य अणुचिण्णो पमायदोसेण ।
हा ! जीव ! अप्पवेरिअ, सुबहु पुरओ विसूरिहिसि ॥५३॥

अर्थ : हे जीव ! तुझे जिनधर्म की प्राप्ति हुई, परन्तु प्रमाद दोष के कारण तूने उसका आचरण नहीं किया । हे आत्मवैरी ! परलोक में तू बहुत खेद प्राप्त करेगा ॥५३॥

सोयंति ते वराया, पच्छा समुवट्ठियंमि मरणंमि ।
पावपमायवसेण, न संचियो जेहि जिणधम्मो ॥५४॥

अर्थ : पापरूप प्रमाद के वशीभूत होकर जिन्होंने जिनधर्म का संचय नहीं किया, वे बेचारे ! मृत्यु के उपस्थित होने पर शोक करते हैं ॥५४॥

धी धी धी संसारं, देवो मरिऊण जं तिरी होइ ।
मरिऊण रायराया, परिपच्चइ निरयजालाहिं ॥५५॥

अर्थ : उस संसार को धिक्कार हो, धिक्कार हो, जिस संसार में देव मरकर तिर्यंच बनते हैं और राजाओं के राजा मरकर नरक की ज्वालाओं में पकाए जाते हैं ॥५५॥

जाइ अणाहो जीवो, दुमस्स पुप्फं व कम्मवायहओ ।
धणधन्नाहरणाइं, घर सयण कुडुंबमिल्हे वि ॥५६॥

अर्थ : धन, धान्य, अलङ्कार, घर, स्वजन और कुटुम्ब के मिलने पर भी कर्मरूपी पवन से आहत वृक्ष के पुष्प की तरह अनाथ हो जाता है ॥५६॥

वसियं गिरीसु वसियं दरीसु वसियं समुद्द मज्झंम्मि ।
रुक्खग्गेसु य विसयं संसारे संसरंतेणं ॥५७॥

अर्थ : संसार में परिभ्रमण करती हुई आत्मा पर्वत पर बसी है, गुफा में बसी है, समुद्र में बसी है और वृक्ष के अग्र भाग पर भी रही है ॥५७॥

देवो नेरइउ त्ति य, कीडपयंगो त्ति माणुसो एसो ।
रुवस्सी य विरूवो, सुहभागी दुक्खभागी य ॥५८॥

अर्थ : यह जीव देव बना है, नारक बना है, कीड़ा और पतङ्गा भी बना है और मनुष्य भी बना है । सुन्दर रूपवाला और खराब रूपवाला भी बना है । सुखी भी बना है और दुःखी भी बना है ॥५८॥

राउत्ति य दमगु त्ति य, एस सवागुत्ति एस वेयविऊ ।
सामी दासो पुज्जो खलोत्ति अधणो धणवइत्ति ॥५९॥

अर्थ : यह जीव राजा और भिखारी भी बना है। चाण्डाल भी बना है और वेदपाठी भी बना है। स्वामी भी हुआ है और दास भी हुआ है। पूज्य भी बना है और दुर्जन भी बना है। धनवान भी बना है और निर्धन भी बना है ॥५९॥

नवि इत्थ कोइ नियमो, सकम्मविणिविट्ठसरिस-कय-चिट्ठो ।
अन्नुन्नरूववेसो नडुव्व परिअत्तए जीवो ॥६०॥

अर्थ : अपने किए हुए कर्म के अनुसार चेष्टा करता हुआ यह जीव नट की तरह अन्य-अन्य रूप और वेष को धारण कर बदलता रहता है इसमें कोई नियम नहीं है (कि पुरुष मरकर पुरुष ही होता है ॥६०॥)

नरएसु वेयणाओ, अणोवमाओ असायबहुलाओ ।
रे जीव ! तए पत्ता, अणंतखुत्तो बहुविहाओ ॥६१॥

अर्थ : हे जीव ! नरकगति में तूने अशाता से भरपूर और जिनकी कोई उपमा न दी जा सके, ऐसी वेदनाएँ अनन्तबार प्राप्त की है ॥६१॥

देवत्ते मणुअत्ते पराभिओगत्तणं उवगएणं ।
भीसणदुहं बहुविहं अणंतखुत्तो समणुभूयं ॥६२॥

अर्थ : देव और मनुष्य भव में भी पराधीनता के कारण अनेक प्रकार का भयङ्कर दुःख अनन्तबार सहन

किया है ॥६२॥

तिरियगइं अणुपत्तो, भीममहावेयणा अणेगविहा ।
जम्मण मरणऽरहट्टे, अणंतखुत्तो परिब्भमिओ ॥६३॥

अर्थ : अनेक प्रकार की महाभयङ्कर वेदना से युक्त तिर्यंचगति को प्राप्तकर इस जीव ने जन्म-मरण रूप अरहट्ट में अनन्तबार परिभ्रमण किया है ॥६३॥

जावंति के वि दुक्खा, सारीरा माणसा व संसारे ।
पत्तो अणंतखुत्तो, जीवो संसारकंतारे ॥६४॥

अर्थ : इस संसार में जितने भी शारीरिक और मानसिक दुःख हैं वे सब दुःख इस संसार में इस जीव ने अनंती बार प्राप्त किए हैं ॥६४॥

तण्हा अणंतखुत्तो संसारे तारिसी तुमं आसी ।
जं पसमेउं सव्वो-दहीणमुदयं न तीरिज्जा ॥६५॥

अर्थ : संसार में अनन्त बार तुझे ऐसी तृषा लगी, जिसे शान्त करने के लिए सभी समुद्रों का पानी भी समर्थ नहीं था ॥६५॥

आसी अणंतखुत्तो, संसारे ते छुहा वि तारिसिया ।
जं पसमेउं सव्वो, पुग्गलकाओ वि न तरिज्जा ॥६६॥

अर्थ : इस संसार में तुझे अनंत बार ऐसी भी भूख लगी है, जिसे शांत करने के लिए सभी पुद्गल भी समर्थ नहीं थे ।

काऊणमणेगाइं जम्मणमरणपरियट्टणसयाइं ।
दुक्खेण माणुसत्तं, जइ लहइ जहिच्छियं जीवो ॥६७॥

अर्थ : जन्म-मरण के सैकड़ों परिवर्तन करते हुए इस जीव को बड़े कष्ट से मनुष्यजन्म मिलता है तब वह इच्छानुसार प्राप्त कर सकता है ॥६७॥

तं तह दुल्लहलंभं, विज्जुलया चंचलं च मणुअत्तं ।
धम्मंमि जो विसीयइ सो काउरिसो न सप्पुरिसो ॥६८॥

अर्थ : उस दुर्लभ और विद्युल्लता के समान चंचल मनुष्यपना को प्राप्तकर जो धर्मकार्य में खेद करता है, वह क्षुद्र पुरुष कहलाता है, सत्पुरुष नहीं ॥६८॥

मणुस्स जम्मे तडिलद्धयंमि,
जिणिंद धम्मो न कओ य जेणं ।
तुट्टे गुणे जह धाणुक्कएणं,
हत्था मलेव्वा य अवस्स तेणं ॥६९॥

अर्थ : धनुष की डोरी टूट जाने के बाद जिस प्रकार धनुर्धर को अपने हाथ ही घिसने पड़ते हैं, उसी प्रकार बिजली की चमक की भाँति मनुष्य-जन्म प्राप्त होने पर भी जिसने जिनेश्वर के धर्म की आराधना नहीं की, उसे बाद में पछताना ही पड़ता है ॥६९॥

रे जीव निसुणि चंचल सहाव,
मिल्हेविणु सयल वि बज्झभाव ।
नव भेय परिग्गह विविह जाल,
संसारि अत्थि सुहुइंदयाल ॥७०॥

अर्थ : हे जीव ! सुनो ! चंचल स्वभाववाले इन बाह्य पदार्थों और नौ प्रकार के परिग्रह के जाल को यहीं छोड़कर तुझे जाना है। संसार में यह सब इन्द्रजाल के समान है ॥७०॥

पिय पुत्त मित्तघर घरणिजाय,
इहलोइअ सव्व नियसुह सहाय ।
नवि अत्थि कोइ तुह सरणि मुक्ख,
इक्कल्लु सहसि तिरिनिरय दुक्ख ॥७१॥

अर्थ : हे मूर्ख ! इस जगत् में पिता, पुत्र, मित्र, पत्नी आदि का समूह अपने-अपने सुख को शोधने के स्वभाव वाला है । तेरे लिए कोई शरण रूप नहीं है । तिर्यंच और नरकगति में तू अकेला ही दुःखों को सहन करेगा ॥७१॥

कुसग्गे जह ओसबिंदुए थोवं चिट्ठइ लंबमाणए ।
एवं मणुआण जीविअं, समयं गोयम ! मा पमायए ॥७२॥

अर्थ : घास के अग्र भाग पर रहा जलबिंदु अल्पकाल के लिए रहता है, उसी प्रकार मनुष्य का जीवन भी अल्पकाल के लिए है। अतः हे गौतम ! तू एक समय का भी प्रमाद मत कर ॥७२॥

संबुज्झह किं न बुज्झह ? संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा ।
नो हु उवणमंति राइओ, नो सुलहं पुणरवि जीवियं ॥७३॥

अर्थ : तुम बोध पाओ ! तुम्हें बोध क्यों नहीं होता है ? वास्तव में परलोक में बोधि की प्राप्ति होना दुर्लभ है। जिस

प्रकार बीते हुए रात-दिन वापस नहीं लौटते हैं, उसी प्रकार यह जीवन पुनः सुलभ नहीं है ॥७३॥

डहरा वुड्ढा य पासह, गब्भत्था वि चयंति माणवा ।
सेणे जह वट्टयं हरे, एवं आउखयंमि तुट्टइ ॥७४॥

अर्थ : देखो ! बाल, वृद्ध और गर्भ में रहे मनुष्य भी मृत्यु पा जाते हैं । जिस प्रकार बाज पक्षी तीतर पक्षी का हरण कर लेता है, उसी प्रकार आयुष्य का क्षय होने पर यमदेव जीव को उठा ले जाता है ॥७४॥

तिहुयण जणं मरंतं, दट्ठूण नयंति जे न अप्पाणं ।
विरमंति न पावाओ, धिद्धि धिट्ठत्तणं ताणं ॥७५॥

अर्थ : तीनों भुवन में जीवों को मरते हुए देखकर भी जो व्यक्ति अपनी आत्मा को धर्ममार्ग में जोड़ता नहीं है और पाप से रुकता नहीं है, वास्तव में उसकी धृष्टता को धिक्कार है ! ॥७५॥

मा मा जंपह बहुअं, जे बद्धा चिक्कणेहिं कम्मेहिं ।
सव्वेसिं तेसिं जायइ, हियोवएसो महादोसो ॥७६॥

अर्थ : गाढ़ कर्मों से जो बंधे हुए हैं, उन्हें ज्यादा उपदेश न दें, क्योंकि उनको दिया गया हितोपदेश महाद्वेष में ही परिणत होता है ॥७६॥

कुणसि ममत्तं धण सयण-विहव पमुहेसुऽणंत दुक्खेसु ।
सिढिलेसि आयरं पुण, अणंत सुक्खंमि मुक्खंमि ॥७७॥

अर्थ : अनंत दुःख के कारणरूप धन, स्वजन और वैभव आदि में तू ममता करता है और अनन्त सुखस्वरूप मोक्ष में अपने आदरभाव को शिथिल करता है ॥७७॥

संसारो दुहहेऊ, दुक्खफलो दुस्सहदुक्खरूवो य ।
न चयंति तं पि जीवा, अइबद्धा नेहनिअलेहिं ॥७८॥

अर्थ : जो दुःख का कारण है, दुःख का फल है और जो अत्यन्त दुःसह ऐसे दुखोंवाला है, ऐसे संसार को, स्नेह की साँकल से बँधे हुए जीव छोड़ते नहीं हैं ॥७८॥

नियकम्म पवण चलिओ जीवो संसार काणणे घोरे ।
का का विडंबणाओ, न पावए दुसह दुक्खाओ ॥७९॥

अर्थ : अपने कर्मरूपी पवन से चलित बना हुआ यह जीव इस संसार रूपी घोर जंगल में असह्य वेदनाओं से युक्त कौन कौनसी विडंबनाओं को प्राप्त नहीं करता है ॥७९॥

सिसिरंमि सीयलानिल-लहरिसहस्सेहिं भिन्न घणदेहो ।
तिरियत्तणंमि रण्णे, अणंतसो निहण मणुपत्तो ॥८०॥

अर्थ : हे आत्मन् ! तिर्यंच के भव में ठण्डी ऋतु में ठण्डी लहरियों से तेरा पुष्ट देह भेदा गया और तू अनन्ती बार मरा है ॥८०॥

गिम्हायवसंतत्तो, रण्णे छुहिओ पिवासिओ बहुसो ।
संपत्तो तिरियभवे, मरणदुहं बहू विसूरंतो ॥८१॥

अर्थ : इस आत्मा ने तिर्यंच के भव में भयङ्कर जङ्गल में ग्रीष्म ऋतु के ताप से अत्यन्त ही संतप्त होकर अनेक बार भूख और प्यास की वेदना से दुःखी होकर मरण के दुःख को प्राप्त किया है ॥८१॥

वासासु रणमज्झे, गिरिनिज्झरणोदगेहि वुज्झंतो ।
सीआनिलडज्झविओ, मओसि तिरियत्तणे बहुसो ॥८२॥

अर्थ : तिर्यंच के भव में जङ्गल में वर्षा ऋतु में झरने के जल के प्रवाह में बहते हुए तथा ठण्डे पवन से संतप्त होकर अनेक बार बेमौत मरा है ॥८२॥

एवं तिरियभवेसु, कीसंतो दुक्खसयसहस्सेहिं ।
वसिओ अणंतखुत्तो, जीवो भीसणभवारण्णे ॥८३॥

अर्थ : इस प्रकार इस संसार रूपी जङ्गल में हजारों लाखों प्रकार के दुःखों से पीड़ित होकर तिर्यंच के भव में अनन्त बार रहा है ॥८३॥

दुट्ठट्ठकम्मपलया-निलपेरिउ भीसणंमि भवरण्णे ।
हिंडंतो नरएसु वि, अणंतसो जीव ! पत्तोसि ॥८४॥

अर्थ : हे जीव ! दुष्ट ऐसे आठ कर्मरूपी प्रलय के पवन से प्रेरित होकर इस भयङ्कर जङ्गल में भटकता हुआ तू अनन्त बार नरकगति में भी गया है ॥८४॥

सत्तसु नरयमहीसु वज्जानलदाह सीअविअणासु ।
वसिओ अणंतखुत्तो विलवंतो करुणसद्देहिं ॥८५॥

अर्थ : जहाँ वज्र की आग के समान दाह की पीड़ा है और भयङ्कर असह्य शीतवेदना है ऐसी सातों नरक पृथवियों में भी करुण शब्दों से विलाप करता हुआ अनन्त बार रहा है ॥८५॥

पिय माय सयण रहिओ, दुरंत वाहिहिं पीडिओ बहुसो ।
मणुयभवे निस्सारे, विलविओ किं न तं सरसि ॥८६॥

अर्थ : साररहित ऐसे मानवभव में माता-पिता तथा स्वजनरहित भयङ्कर व्याधि से अनेक बार पीड़ित हुआ तू विलाप करता था, उसे तू क्यों याद नहीं करता है ? ॥८६॥

पवणुव्व गयण मग्गे, अलक्खिओ भमइ भववणे जीवो ।
ठाणट्ठाणंमि समु-ज्झिऊण धण सयणसंघाए ॥८७॥

अर्थ : स्थान-स्थान में धन तथा स्वजन के समूह को छोड़कर भव वन में अपरिचित बना हुआ यह जीव आकाश मार्ग में पवन की तरह अदृश्य रहकर भटकता रहता है ॥८७॥

विंधिज्जंता असयं जम्म-जरा-मरण-तिक्खकुंतेहिं ।
दुहमणुहवंति घोरं, संसारे संसरंत जिया ॥८८॥

अर्थ : इस संसार में भटकनेवाले जीव जन्म, जरा और मृत्युरूपी तीक्ष्ण भालों से बिंधाते हुए भयङ्कर दुःखों का अनुभव करते हैं ॥८८॥

तहवि खणं पि कया वि हु अन्नाण भुअंगडंकिआ जीवा ।
संसारचारगाओ न य उव्वज्जंति मूढमणा ॥८९॥

अर्थ : अज्ञानरूपी सर्प से डसे हुए मूढ़ मनवाले जीव इस संसाररूपी कैद से कभी भी उद्वेग प्राप्त नहीं करते हैं ॥८९॥

कीलसि कियंत वेलं, सरीर वावीइ जत्थ पइ समयं ।
कालरहट्टघडीहिं, सोसिज्जइ जीवियंभोहं ॥९०॥

अर्थ : इस देहरूपी बावड़ी में तू कितने समय तक क्रीड़ा करेगा ? जहाँ से प्रति समय कालरूपी अरहट के घड़ों द्वारा जीवनरूपी पानी के प्रवाह का शोषण हो रहा है ॥९०॥

रे जीव ! बुज्झ मा मुज्झ, मा पमायं करेसि रे पाव ! ।
किं परलोए गुरु दुक्ख-भायणं होहिसि अयाण ? ॥९१॥

अर्थ : हे जीव ! तू बोध पा ! मोहित न बन । हे पापी ! तू प्रमाद मत कर ! हे अज्ञानी ! परलोक में भयङ्कर दुःख का भाजन क्यों बनता है ? ॥९१॥

बुज्झसु रे जीव ! तुमं, मा मुज्झसु जिणमयंमि नाऊणं ।
जम्हा पुणरवि एसा, सामग्गी दुल्लहा जीव ! ॥९२॥

अर्थ : हे जीव ! तू बोध पा ! जिनमत को जानकर तू व्यर्थ ही मोहित न हो ! क्योंकि इस प्रकार की सामग्री की पुनः प्राप्ति होना दुर्लभ है ॥९२॥

दुलहो पुण जिणधम्मो, तुमं पमायायरो सुहेसी य ।
दुसहं च नरयदुक्खं, कह होहिसि तं न याणामो ॥९३॥

अर्थ : जिनधर्म की प्राप्ति दुर्लभ है । तू प्रमाद में आदरवाला और सुख का अभिलाषी है । नरक का दुःख

असह्य है । तेरा क्या होगा, यह हम नहीं जानते हैं ॥९३॥

अथिरेण थिरो समलेण निम्मलो परवसेण साहीणो ।
देहेण जइ विढप्पइ धम्मो ता किं न पज्जत्तं ॥९४॥

अर्थ : अस्थिर, मलिन और पराधीन देह से स्थिर, निर्मल और स्वाधीन धर्म की प्राप्ति हो सकती हो तो तुझे क्या प्राप्त नहीं हुआ ? ॥९४॥

जह चिंतामणिरयणं, सुलहं न होइ तुच्छ विहवाणं ।
गुण विहव वज्जियाणं, जियाण तह धम्मरयणं पि ॥९५॥

अर्थ : जिस प्रकार तुच्छ वैभववाले गरीब को चिन्तामणि रत्न सुलभ नहीं होता है, उसी प्रकार गुणवैभव से दरिद्र व्यक्ति को भी धर्मरूपी रत्न की प्राप्ति नहीं होती है ॥९५॥

जह दिट्ठीसंजोगो, न होइ जच्चंधयाण जीवाणं ।
तह जिणमयसंजोगो, न होइ मिच्छंधजीवाणं ॥९६॥

अर्थ : जन्म से अन्धे जीव को जिस प्रकार दृष्टि का संयोग नहीं होता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व से अन्धे बने हुए जीव को भी जिनमत का संयोग नहीं होता है ॥९६॥

पच्चक्खमणंत गुणे, जिणिंदधम्मे न दोसलेसोऽवि ।
तहविहु अन्नाणंधा, न रमंति कयावि तम्मि जिया ॥९७॥

अर्थ : जिनेश्वर के धर्म में प्रत्यक्ष अनंत गुण हैं और दोष नाम मात्र भी नहीं है, फिर भी खेद की बात है कि अज्ञान से अन्ध बने हुए जीव उसमें रमणता नहीं करते हैं ॥९७॥

मिच्छे अणंतदोसा, पयडा दीसंति न वि य गुणलेसो ।
तह वि य तं चेव जिया, ही मोहंधा निसेवंति ॥९८॥

अर्थ : मिथ्यात्व में प्रगट अनंत दोष दिखाई देते हैं और उसमें गुण का लेश भी नहीं है, फिर भी आश्चर्य है कि मोह से अन्धे बने हुए जीव उसी मिथ्यात्व का सेवन करते हैं ॥९८॥

धी धी ताण नराणं, विन्नाणे तह गुणेसु कुसलत्तं ।
सुह सच्च धम्म रयणे, सुपरिक्खं जे न जाणंति ॥९९॥

अर्थ : जो सुखदायी और सत्यधर्मरूप रत्न की अच्छी तरह से परीक्षा नहीं कर सकते हैं, उन पुरुषों के विज्ञान और गुणों की कुशलता को धिक्कार हो ! धिक्कार हो !! ॥९९॥

जिणधम्मोऽयं जीवाणं, अपुव्वो कप्पपायवो ।
सग्गापवग्गसुक्खाणं, फलाणं दायगो इमो ॥१००॥

अर्थ : यह जिनधर्म जीवों के लिए अपूर्व कल्पवृक्ष है। यह धर्म स्वर्ग और मोक्ष के सुखों का फल देने वाला है ॥१००॥

धम्मो बंधु सुमित्तो य, धम्मो य परमो गुरु ।
मुक्खमग्ग पयट्टाणं, धम्मो परमसंदणो ॥१०१॥

अर्थ : धर्म बन्धु और अच्छा मित्र है । धर्म परमगुरु है । मोक्षमार्ग में प्रवृत्त व्यक्ति के लिए धर्म श्रेष्ठ रथ है ॥१०१॥

चउगइऽणंतदुहानल-पलित्त भवकाणणे महाभीमे ।
सेवसु रे जीव ! तुमं, जिणवयणं अमियकुंडसमं ॥१०२॥

अर्थ : हे जीव ! चारगतिरूप अनन्त दुःख की अग्नि में जलते हुए महाभयङ्कर भववन में अमृतकुण्ड के समान जिनवाणी का तू सेवन कर ॥१०२॥

विसमे भवमरुदेसे, अणंतदुहगिम्ह तावसंतत्ते ।
जिणधम्मकप्परुक्खं, सरसु तुमं जीव सिवसुहदं ॥१०३॥

अर्थ : हे जीव ! अनन्त दुःख रूप ग्रीष्म ऋतु के ताप से सन्तप्त और विषम ऐसे संसाररूप मरुदेश में शिवसुख को देनेवाले जिनधर्म रूपी कल्पवृक्ष को तू याद कर ॥१०३॥

किंबहुणा जिणधम्मे, जइयव्वं जह भवोदहिं घोरं ।
लहु तरिउमणंतसुहं, लहइ जिओ सासयं ठाणं ॥१०४॥

अर्थ : ज्यादा कहने से क्या फायदा ! भयङ्कर ऐसे भवोदधि को सरलता से पारकर अनन्त सुख का शाश्वत स्थान जिस प्रकार से प्राप्त हो, उस प्रकार से जिनधर्म में यत्न करना चाहिए ।

● ● ●

इन्द्रिय पराजय शतक

सुच्चिय सूरो सो चेव, पंडिओ तं पसंसिमो निच्चं ।
इंदियचोरेहिं सया, न लुंटिअं जस्स चरणधणं ॥१॥

अर्थ : वही सच्चा शूरवीर है, वही सच्चा पंडित है और उसी की हम नित्य प्रशंसा करते हैं, जिसका चारित्र रूपी धन इन्द्रिय रूपी चोरों के द्वारा नहीं लूटा गया है ॥१॥

इंदियचवल तुरंगो, दुग्गइमग्गाणु धाविरे निच्चं ।
भाविअभवस्सरूवो, रुंभइ जिणवयणरस्सीहिं ॥२॥

अर्थ : इन्द्रिय रूपी चपल घोड़े हमेशा दुर्गति के मार्ग पर दौड़ने वाले हैं । जिसने संसार के स्वरूप का चिंतन किया है, वह जिनवचन रूपी लगाम के द्वारा इन इन्द्रियों को रोकता है ॥२॥

इंदियधुत्ताणमहो, तिलतुसमित्तंपि देसु मा पसरं ।
जइ दिन्नो तो नीओ, जत्थ खणो वरिसकोडिसमो ॥३॥

अर्थ : हे जीव ! इन्द्रिय रूपी धूर्तों को तुम लेश मात्र भी प्रश्रय मत देना, यदि दिया तो करोड़ों वर्षों का दुःख तेरे सिर पर आ गया, ऐसा समझना ॥३॥

अजिइंदिएहि चरणं कट्ठं व घूणेहि कीरइ असारं ।
तो धम्मत्थीहि दढं, जइयव्वं इंदियजयंमि ॥४॥

अर्थ : जिस प्रकार दीमक अंदर से कुतरकर लकड़ी

को खोखला बना देते हैं, उसी प्रकार इंद्रियों का गुलाम बना व्यक्ति अपने चारित्र को खोखला बना लेता है, अतः धर्म के अर्थी व्यक्ति को इंद्रियों को जीतने में प्रयत्नशील बनना चाहिए ॥४॥

जह कागिणीइ हेउं, कोडिं रयणाण हारए कोइ ।
तह तुच्छ विसयगिद्धा, जीवा हारंति सिद्धिसुहं ॥५॥

अर्थ : जिस प्रकार कोई मूर्ख व्यक्ति एक काकिणी रत्न को पाने के लिए करोड़ों रत्नों को हार जाता है, उसी प्रकार तुच्छ विषयसुखों में आसक्त बना हुआ जीव मोक्षसुख को हार जाता है ॥५॥

तिलमित्तं विसयसुहं, दुहं च गिरिराय सिंगतुंगयरं ।
भवकोडीहिं न निट्ठइ, जं जाणसु तं करिज्जासु ॥६॥

अर्थ : इन्द्रियों से प्राप्त होने वालाा विषयसुख तो नाम मात्र का है, जबकि उसके बदले में प्राप्त होने वाला दुःख तो मेरु पर्वत के शिखर जितना ऊँचा है, करोडों भवों द्वारा भी उस दुःख का अन्त आनेवाला नहीं है, अतः यह जानकर अब तुझे जो ठीक लगे, वह कर ! ॥६॥

भुंजंता महुरा विवागविरसा, किंपागतुल्ला इमे ।
कच्छुकंडुअणं व दुक्खजणया दाविंति बुद्धि सुहं ॥७॥

मज्झण्हे मयतिण्हिअव्व सययं, मिच्छाभिसंधिप्पया ।
भुत्ता दिंति कुजम्म जोणिगहणं, भोगा महावेरिणो ॥८॥

अर्थ : ये कामभोग भोगते समय मधुर हैं परन्तु किंपाक फल की तरह परिणाम में कटु हैं। खुजली के रोगी को खुजलाते समय सुख की बुद्धि होती है, जब कि वह परिणाम में तो दुःख ही देती है ॥७॥

मृगतृष्णा की तरह ये भोग मध्याह्न में अर्थात् यौवन काल में मिथ्यात्व के साथ प्रतारणा करने वाले हैं भोगने पर ये दुष्ट योनि में ले जानेवाले हैं। ये भोग महावैरी हैं ॥८॥

सक्को अग्गी निवारेउं, वारिणा जलिओ वि हु।
सव्वोदहि जलेणा वि, कामग्गी दुन्निवारओ ॥९॥

अर्थ : अति भयंकर प्रज्वलित आग को भी पानी द्वारा बुझाया जा सकता है, परन्तु सभी समुद्रों के पानी से भी काम रूपी अग्नि को शान्त नहीं किया जा सकता है ॥९॥

विसमिव मुहंमि महुरा, परिणाम निकाम दारुणा विसया।
कालमणंतं भुत्ता, अज्ज वि मुत्तुं न किं जुत्ता ॥१०॥

अर्थ : विषयुक्त भोजन की तरह ये विषयसुख प्रारम्भ में मधुर हैं, परन्तु परिणाम में तो अत्यन्त ही दारुण हैं। अनंतकाल तक इन विषयसुखों का भोग किया है, तो क्या अब भी वे छोड़ने योग्य नहीं हैं ॥१०॥

विसयरसासवमत्तो, जुत्ताजुत्तं न याणइ जीवो।
झूरइ कलुणं पच्छा, पत्तो नरयं महाघोरं ॥११॥

अर्थ : विषय रस रूपी मदिरा के पान से मदोन्मत्त

बना जीव योग्य-अयोग्य कुछ भी नहीं जानता है, फिर महा भयंकर नरक में जाता है और वहाँ करुण विलाप करता है ॥११॥

जह निंबदुमुपन्नो, कीडो कडुअं पि मन्नए महुरं ।
तह सिद्धिसुह परुक्खा, संसारदुहं सुहं बिंति ॥१२॥

अर्थ : जिस प्रकार कड़वे नीम के वृक्ष में पैदा हुआ कीड़ा कड़वे नीम को भी मीठा मानता है, उसी प्रकार मोक्षसुख से परोक्ष अज्ञानी जीव संसार के दुःख को भी सुख रूप मान लेता है ॥१२॥

अथिराण चंचलाण य, खणमित्त सुहंकराण पावाणं ।
दुग्गइ निबंधणाणं, विरमसु एआण भोगाणं ॥१३॥

अर्थ : हे जीव ! अस्थिर, चंचल, क्षणमात्र सुख देनेवाले और दुर्गति के कारणभूत इन पापी विषयसुखों से तू विराम पा ॥१३॥

पत्ता य कामभोगा सुरेसु, असुरेसु तह य मणुएसु ।
न य जीव ! तुज्झ तित्ती, जलणस्स व कट्ठनियरेण ॥१४॥

अर्थ : हे जीव ! देव-दानव और मनुष्य भवों में तुझे काम-भोग सुख प्राप्त हुए, परन्तु जिस प्रकार काष्ठ समूह से अग्नि तृप्त नहीं होती हैं, उसी प्रकार उन सुखों से भी तुझे तृप्ति नहीं हुई है ॥१४॥

जहा य किंपागफला मणोरमा,
रसेण वन्नेण य भुंजमाणा ।
ते खुड्डए जीविय पच्चमाणा,
एसोवमा कामगुणा विवागे ॥१५॥

अर्थ : जिस प्रकार किंपाक का फल स्वाद और रंग से मन को आकर्षित करने वाला होता है, परन्तु खाने के बाद पचने पर प्राणों का नाश करता है, उसी प्रकार कामभोग भी परिणाम में इसी विपाक वाले हैं ॥१५॥

सव्वं विलवियं गीयं, सव्वं नट्टं विडंबणा ।
सव्वे आभरणा भारा, सव्वे कामा दुहावहा ॥१६॥

अर्थ : सभी प्रकार के संगीत विलाप तुल्य हैं, सभी प्रकार के नाटक विडंबना ही हैं, सभी प्रकार के आभूषण भार समान हैं और सभी प्रकार के काम सुख दुःख को लानेवाले हैं ॥१६॥

देविंद चक्कवट्टित्तणाइ रज्जाइ उत्तमा भोगा ।
पत्तो अणंतखुत्तो, न य हं तत्तिं गओ तेहिं ॥१७॥

अर्थ : देवेन्द्र और चक्रवर्ती पद और राज्य के उत्तम भोग अनंतबार प्राप्त किये हैं, परन्तु इनसे मुझे कभी तृप्ति नहीं हुई है ॥१७॥

संसार चक्कवाले सव्वे, वि अ पुग्गला मए बहुसो ।
आहरिआय परिणामिआय, न य तेसु तत्तोऽहं ॥१८॥

अर्थ : संसार रूपी चक्रवाल में मैंने सभी पुद्गलों को औदारिक आदि के रूप में ग्रहण किया है और औदारिक आदि के रूप में भोगा है, फिर भी मैं उनसे तृप्त नहीं हुआ हूँ ॥१८॥

उवलेवो होइ भोगेसु, अभोगी नोवलिप्पइ ।
भोगी भमइ संसारे, अभोगी विप्पमुच्चइ ॥१९॥

अर्थ : विषय भोग करनेवाले जीव को कर्म का बंध होता है, जो जीव विषयों का भोग नहीं करता है, वह कर्म के बंध से लिप्त नहीं होता है । भोगी जीव संसार में भटकता है और अभोगी जीव कर्म से मुक्त होता है ॥१९॥

अल्लो सुक्को य दो छूढा, गोलया मट्टियामया ।
दो वि आवडिआ कूडे, जो अल्लो सो विलग्गइ ॥२०॥

एवं लग्गंति दुम्मेहा, जे नरा कामलालसा ।
विरत्ता उ न लग्गंति, जहा सुक्के अ गोलए ॥२१॥

अर्थ : मिट्टी के गीले और सूखे दो गोलों को दीवार पर फेंका गया, जो गीला था, वह दीवार पर चिपक गया और जो सूखा था, वह नहीं चिपका। इसी प्रकार दुर्बुद्धिवाले जो मनुष्य काम की लालसा वाले होते हैं, वे स्त्री आदि में लिपट जाते हैं और जो काम-भोगों से विरक्त होते हैं, वे शुष्क गोले की तरह स्त्री आदि में लिप्त नहीं होते हैं ॥२०-२१॥

तणकट्ठेहिं व अग्गी, लवणसमुद्दो नई सहस्सेहिं ।
न इमो जीवो सक्को, तिप्पेउं कामभोगेहिं ॥२२॥

अर्थ : जिस प्रकार तृण और काष्ठ द्वारा अग्नि तथा हजारों नदियों द्वारा लवण समुद्र कभी तृप्त नहीं होता है, उसी प्रकार कामभोगों द्वारा यह जीव कभी तृप्त नहीं हो सकता है ॥२२॥

भुत्तूण वि भोगसुहं, सुर नर-खयरेसु पुण पमाएणं ।
पिज्जइ-नरएसु भेरव, कलकल तउ तंबपाणाइं ॥२३॥

अर्थ : प्रमाद से आसक्त होकर देव, मनुष्य और विद्याधरपने में अनेक प्रकार के भोगसुखों को भोगता है, जिसके परिणाम-स्वरूप इस जीव को नरक में उबलते हुए भयंकर सीसे और तांबे के रस का पान करना पड़ता है ॥२३॥

को लोभेण न निहओ, कस्स न रमणीहिं भोलिअं हिअयं ।
को मच्चुणा न गहिओ, को गिद्धो नेव विसएहिं ॥२४॥

अर्थ : इस जगत् में लोभ द्वारा कौन नहीं मारा गया ! स्त्रियों के द्वारा किसका हृदय न ठगा गया ! मृत्यु के द्वारा किसका ग्रहण नहीं हुआ और विषयों में कौन (आशक्त) नहीं बना ! ॥२४॥

खणमित्त सुक्खा, बहुकाल दुक्खा,
पगाम दुक्खा अनिकाम सुक्खा ।
संसारमोक्खस्स विपक्ख भूआ,
खाणी अणत्थाण उ कामभोगा ॥२५॥

अर्थ : संसार के काम-सुख क्षण मात्र सुख देनेवाले हैं

और दीर्घ काल तक दुःख देनेवाले हैं । जो क्षण अत्यन्त दुःख देनेवाले हैं और अल्प सुख देनेवाले हैं । संसार से मुक्त होने में दुश्मन समान-ये सारे काम-भोग अनर्थों की खान ही हैं ॥२५॥

सव्वगहाणं पभवो, महागहो सव्वदोसपायट्टी ।
कामग्गहो दुरप्पा, जेण भिभूअं जगं सव्वं ॥२६॥

अर्थ : काम नाम का विचित्र ग्रह, जिसने संपूर्ण विश्व को वश में किया है, जो सभी उन्मादों का उत्पत्ति स्थान है, महा उन्माद है और सभी दोषों को पैदा करने वाला है ॥२६॥

जह कच्छुल्लो कच्छुं, कंडुअमाणो दुहं मुणइ सुक्खं ।
मोहाउरा मणुस्सा, तह कामदुहं सुहं बिंति ॥२७॥

अर्थ : जिस प्रकार खुजली का रोगी खुजलाते समय दुःख को सुख रूप मानता है, उसी प्रकार मोह रूपी काम की खुजली से व्याकुल बना मनुष्य काम रूपी दुःख को भी सुख रूप मानता है ॥२७॥

सल्लं कामा विसं कामा, कामा आसीविसोवमा ।
कामे पत्थेमाणा, अकामा जंति दुग्गइं ॥२८॥

अर्थ : कामभोग शल्य समान है ! कामभोग विष समान है । काम भोग की इच्छा करनेवाले जीव, कामभोग का भोग किये बिना ही दुर्गति में चले जाते हैं ॥२८॥

विसए अवइक्खंता, पडंति संसारसायरे घोरे ।
विसएसु निराविक्खा, तरंति संसार कंतार ।।२९।।

अर्थ : विषयों की अपेक्षा रखनेवाले जीव भयंकर संसार सागर में डूब जाते हैं, जबकि विषयों के प्रति निरपेक्ष रहनेवाले जीव संसार-अटवी को पार कर जाते हैं ।।२९।।

छलिआ अवइक्खंता, निरावइक्खा गया अविग्घेणं ।
तम्हा पवयणसारे, निरावइक्खेण होअव्वं ।।३०।।

अर्थ : विषयों की अपेक्षा रखनेवाले जीव ठगे गए हैं, जबकि जो विषयों से निरपेक्ष हैं, वे निर्विघ्नतया पार उतर गए हैं । अतः प्रवचन का सार यही है कि विषयों के प्रति निरपेक्ष बनना चाहिए ।।३०।।

विसयाविक्खो निवडइ, निरविक्खो तरइ दुत्तर भवोहं ।
देवी दीव समागय-भाउअजुअलेण दिट्ठंतो ।।३१।।

अर्थ : विषयों की अपेक्षा रखनेवाला संसार में डूबता है और विषयों से निरपेक्ष रहनेवाले संसार-सागर से पार उतर जाते हैं । देवी-द्वीप पर आए भ्रातृयुगल का यहाँ दृष्टान्त है ।।३१।।

जं अइतिक्खं दुक्खं, जं च सुहं उत्तमं तिलोयंमि ।
तं जाणसु विसयाणं, वुड्ढिक्खय हेउअं सव्वं ।।३२।।

अर्थ : तीन लोक में जो अति दुःख है और जो उत्तम सुख है, वह विषयों की वृद्धि और क्षय के कारण है, ऐसा

तुम जानो ॥३२॥

इंदिय विसयपत्ता, पडंति संसारसायरे जीवा ।
पक्खि व्व छिन्नपंखा, सुसीलगुण पेहुणविहूणा ॥३३॥

अर्थ : कटे हुए पंखवाले पक्षी की तरह इन्द्रियों के विषयों में आसक्त जीव संसार सागर में गिर जाते हैं ॥३२॥

न लहइ जहा लिहंतो, मुहल्लिअं अट्ठिअं जहा सुणओ ।
सोसइ तालुय रसियं, विलिहंतो मन्नए सुक्खं ॥३४॥

महिलाण कायसेवी न, लहइ किं चि वि सुहं तहा पुरिसो ।
सो मन्नए वराओ, सय काय परिस्समं सुक्खं ॥३५॥

अर्थ : जिस प्रकार कुत्ता मुँह में रही हड्डी को जीभ से चाटते समय कुछ भी प्राप्त नहीं करता है, परन्तु अपने गले को सुखाता है और हड्डी के चबाने से उसके मसूड़ों में से खून निकलता है, उसी खून का स्वाद लेते हुए उसे सुख मानता है। उसी प्रकार स्त्रीओ के देहका भोग करने से पुरुष को कुछ भी सुख नहीं मिलता है, परन्तु वह बेचारा काया के परिश्रम को ही सुख मानता है ॥३४-३५॥

सुट्ठु वि मग्गिज्जंतो, कत्थवि कलीइ नत्थि जह सारो ।
इंदियविसएसु तहा, नत्थि सुहं सुट्ठु वि गविट्ठं ॥३६॥

अर्थ : जिस प्रकार अच्छी तरह से शोध करने पर भी केले के स्कंध में कहीं सार दिखाई नहीं देता है उसी प्रकार इन्द्रियों के विषय में भी विचार करने पर लेश भी सुख

दिखाई नहीं देता है ॥३६॥

सिंगार तरंगाए, विलासवेलाइ जुव्वणजलाए ।
के के जयंमि पुरिसा, नारी नईए न बुड्डुंति ॥३७॥

अर्थ : शृंगार रूपी तरंगोंवाली, विलासरूपी ज्वार वाली, यौवनरूपी जलवाली, नारी रूपी नदी में कौन सा पुरुष डूबता नहीं है ॥३७॥

सोयसरी दुरिअदरी, कवडकुडी महिलिआ किलेसकरी ।
वयरविरोअण-अरणी,दुक्खखाणी सुक्ख पडिवक्खा ॥३८॥

अर्थ : नारी शोक की नदी, पाप की गुफा, कपट का मंदिर, क्लेश उत्पन्न करनेवाली, वैर रूपी अग्नि के लिए अरणि काष्ठ समान, दुःख की खान और सुख की वैरिणी है ॥३८॥

अमुणिअ मणपरिकम्मो, सम्मं को नाम नासिउं तरइ ।
वम्मह सर पसरोहे, दिट्ठिच्छोहे मयच्छीणं ॥३९॥

अर्थ : कामदेव के बाणों के समान स्त्रियों की दृष्टि से क्षोभ पाकर, स्त्री के मनोव्यापार को नहीं जाननेवाला ऐसा कौन पुरुष भाग जाने में समर्थ है ? ॥३९॥

परिहरसु तओ तासिं, दिट्ठिं दिट्ठीविसस्स व अहिस्स ।
जं रमणि नयणबाणा, चरित्तपाणे विणासंति ॥४०॥

अर्थ : इस कारण स्त्री के नयण-बाण चारित्र रूपी प्राणों का नाश करते हैं, अतः दृष्टिविष सर्प जैसी स्त्रियों को

तुम दृष्टि से ही दूर करो ॥४०॥

सिद्धंतजलहि पारंगओ वि, विजिइंदिओ वि सूरो वि ।
दढचित्तो वि छलिज्जइ, जुवइ पिसाईहिं खुड्डाहिं ॥४१॥

अर्थ : सिद्धान्त रूपी सागर को पार किया हुआ जितेन्द्रिय, शूरवीर और दृढ़चित्तवाला भी क्षुद्र ऐसी स्त्री रूपी पिशाचिनियों के द्वारा ठगा जाता है ॥४१॥

मयण नवणीय विलओ, जह जायइ जलण संनिहाणंमि ।
तह रमणि-संनिहाणे, विद्दवइ मणो मुणीणं पि ॥४२॥

अर्थ : जिस प्रकार अग्नि के संपर्क से मोम और नवनीत (मक्खन) पिघल जाता है, उसी प्रकार स्त्री के संपर्क से मुनियों का मन भी पिघल जाता है ॥४२॥

नीयंगमाहिं सुपयोहराहिं, उप्पेच्छ-मंथरागईहिं ।
महिलाहि निमग्गाहिव, गिरिवर गुरुआ वि भिज्जंति ॥४३॥

अर्थ : नीचे जानेवाली, अच्छे पानी को धारण करनेवाली और मंथर गतिवाली नदी द्वारा बड़े पर्वत भी भेदे जाते हैं, उसी प्रकार नीच लोगों का संपर्क करनेवाली, सुन्दर स्तनवाली और ऊपर देख-मंथरगति से चलनेवाली स्त्रियाँ महापुरुषों के मन को भी भेद देती हैं ॥४३॥

विसयजलं मोहकलं, विलासबिब्बो अ जलयराइन्नं ।
मयमयरं उत्तिन्ना, तारुण्ण महण्णवं धीरा ॥४४॥

अर्थ : विषय रूपी जल, मोह रूपी मधुर आवाज,

विलास और विव्वोअ रूपी जलचर प्राणियों से व्याप्त तथा मद रूपी मगरों से युक्त तारुण्य रुप महासमुद्र को धीरपुरुष पार कर देते हैं ॥४४॥

जइ वि परिचत्तसंगो, तवतणुअंगो तहा वि परिवडइ ।
महिलासंसग्गीए, कोसाभवणुसिय मुणिव्व ॥४५॥

अर्थ : संग का त्याग किया हो और तप से कृश शरीरवाले हो, फिर भी स्त्री के संग से कोशा भवन में रहे मुनि की तरह पतन हो जाता है ॥४५॥

सव्वगंथ विमुक्को, सीईभूओ पसंतचित्तो य ।
जं पावइ मुत्तिसुहं, न चक्कवट्टी वि तं लहइ ॥४६॥

अर्थ : सभी प्रकार की ग्रंथियों से मुक्त, शीतल व प्रशांत चित्तवाला साधु जिस मुक्तिसुख का अनुभव करता है, वह सुख चक्रवर्ती को भी प्राप्त नहीं है ॥४६॥

खेलंमि पडिअमप्पं, जह न तरइ मच्छिआ विमोएउं ।
तह विसयखेलपडिअं, न तरइ अप्पंपि कामंधो ॥४७॥

अर्थ : जिस प्रकार श्लेष्म में गिरी हुई मक्खी उसमें से बचने के लिए समर्थ नहीं होती है, उसी प्रकार कामांध पुरुष भी विषय रूपी श्लेष्म में गिरकर अपनी आत्मा का उद्धार करने में समर्थ नहीं हो पाता है ॥४७॥

जं लहइ वीअराओ, सुक्खं तं मुणइ सुच्चिय न अन्नो ।
न हि गत्ता सूअरओ, जाणइ सुरलोइअं सुक्खं ॥४८॥

अर्थ : राग रहित आत्मा जिस सुख का अनुभव करती है, उस सुख का उन्हें ही पता होता है गंदगी में पड़े सूअर को देवलोक में रहे सुखों का बोध नहीं होता है ॥४८॥

जं अज्जवि जीवाणं, विसएसु दुहासवेसु पडिबंधो ।
तं नज्जइ गुरुआण वि, अलंघणिज्जो महामोहो ॥४९॥

अर्थ : दुःखों को लानेवाले विषयों में आज भी जीवों को जो राग है, उससे पता चलता है कि महामोह को जीतना बड़ों के लिए भी कठिन है ॥४९॥

जे कामंधा जीवा, रमंति विसएसु ते विगयसंका ।
जे पुण जिणवयणरया, ते भीरु तेसु विरमंति ॥५०॥

अर्थ : जो कामांध पुरुष हैं, वे शंका रहित होकर विषयों में लीन होते हैं और जो जिनवचन में अनुरक्त हैं, वे भीरु होकर विषयों से विराम पाते हैं ॥५०॥

असुइ मुत्त-मल पवाहरुवयं,
वंत-पित्त-वस-मज्ज फोफसं ।
मेअ-मंस-बहु-करंडयं,
चम्म-मित्त पच्छाइयं जुवइ अंगयं ॥५१॥

मंसं इमं मुत्त पुरीसमीसं,
सिंघाण खेलाइअ-निज्झरंतं ।
एअं अणिच्चं किमिआण वासं,
पासं नराणं मइबाहिराणं ॥५२॥

अर्थ : अशुचि, मल-मूत्र के प्रवाह रूप, वमन, पित्त, वसा, मज्जा, फेफडा, मेद, मांस और हड्डियों के करंडक रूप चमड़ी से ढका हुआ, साक्षात् मांस के पिंड समान, मल-मूत्र से मिश्रित, श्लेष्म-कफ आदि अशुचि बहाने वाला, अनित्य, कृमियों का निवास ऐसा युवती का शरीर मतिबाह्य पुरुषों के लिए बंधन ही है ॥५१-५२॥

पासेण पंजरेण य, बज्झंति चउप्पया य पक्खी य ।
इअ जुवइ पंजरेणय, बद्धा पुरिसा किलिस्संति ॥५३॥

अर्थ : पाश द्वारा चतुष्पद और पिंजरे द्वारा पंखी को बंधन ग्रस्त किया जाता है, उसी प्रकार युवती रूपी पिंजरे में बद्ध पुरुष क्लेश पाता है ॥५३॥

अहो मोहो महामल्लो, जेणं अम्हारिसा वि हु ।
जाणंता वि अणिच्चत्तं, विरमन्ति न खणं पि हु ॥५४॥

अर्थ : आश्चर्य है कि मोह महामल्ल (का इनका प्रभाव) है, कि जिस कारण अनित्यत्व को जानते हुए भी हमारे जैसे भी स्त्रियों के संग से क्षण भर के लिए भी विराम नहीं पाते हैं ॥५४॥

जुवइहि सह कुणंतो संसग्गिं कुणइ सयलदुक्खेहिं ।
न हि मूसगाण संगो, होइ सुहो सह...बिडालेहिं ॥५५॥

अर्थ : युवती के साथ संसर्ग करनेवाला सभी दुःखों के साथ संसर्ग करता है चूहे को बिल्ली के साथ संसर्ग कभी

सुखकारक नहीं होता है ॥५५॥

हरिहर चउराणण, चंदसूरखंदाइणो वि जे देवा ।
नारीण किंकरत्तं, कुणंति धिद्धी विसयतिण्हा ॥५६॥

अर्थ : हरि, हर, ब्रह्मा, चंद्र, सूर्य तथा स्कंद आदि देव भी नारी का किंकरपना करते हैं। सचमुच, विषय तृष्णा को धिक्कार हो ॥५६॥

सीअं च उण्हं च सहंति मूढा,
इत्थीसु सत्ता अविवेअवंता ।
इलाइपुत्तव्व चयंति जाइ,
जीअं च नासंति य रावणुव्व ॥५७॥

अर्थ : स्त्रियों में आसक्त ऐसे अविवेकी मूढ़ पुरुष ठंडी-गर्मी को सहन करते हैं। इलाचीपुत्र की तरह जाति का त्याग करते हैं और रावण की तरह जीवन का भी नाश करते हैं ॥५७॥

वुत्तूण वि जीवाणं, सुदुक्कराइं ति पावचरियाइं ।
भयवं जा सा सा सा, पच्चाएसो हु इणमो ते ॥५८॥

अर्थ : जीवों का पाप चरित्र कहना भी अतिदुष्कर है। 'भयवं जा सा सा सा' यहाँ दृष्टान्त है ॥५८॥

जल लव तरलं जीअं, अथिरा लच्छी वि भंगुरो देहो ।
तुच्छा य कामभोगा, निबंधणं दुक्खलक्खाणं ॥५९॥

अर्थ : यह जीवन जल के बिंदु के समान चंचल है।

लक्ष्मी भी अस्थिर है। देह नाशवन्त है। कामभोग भी तुच्छ है और लाखों दुःखों का कारण है ॥५९॥

नागो जहा पंकजलावसन्नो,
दट्ठुं थलं नाभिसमेइ तीरं।
एवं जिआ कामगुणेसु गिद्धा,
सुधम्म मग्गे न रया हवंति ॥६०॥

अर्थ : जिस प्रकार कीचड़ में फँसा हुआ हाथी तट को देखने पर भी तट को प्राप्त नहीं कर पाता है, उसी प्रकार कामभोगों में आसक्त बना हुआ जीव सद्धर्म के मार्ग में रत नहीं हो पाता है ॥६०॥

जह विट्ठ पुंज खुत्तो, किमी सुहं मन्नए सयाकालं।
तह विसयासुइ रत्तो जीवो, वि मुणइ सुहं मूढो ॥६१॥

अर्थ : जिस प्रकार विष्ठा के ढेर में रहा कृमि हमेशा उसी में सुख मानता है, उसी प्रकार विषय रूपी अशुचि में पड़ा हुआ मूर्ख मनुष्य उसी में सुख मानता है ॥६१॥

मयरहरो व जलेहिं, तह वि हु दुप्पूरओ इमो आया।
विसया मिसंमि गिद्धो, भवे भवे वच्चइ न तत्तिं ॥६२॥

अर्थ : जिस प्रकार समुद्र जल से कभी तृप्त नहीं होता है, उसी प्रकार विषय रूपी आमिष (भोग्य वस्तु) में आसक्त जीव भव-भव में तृप्ति नहीं पाता है ॥६२॥

विसयवसट्टा जीवा, उब्भडरुवाइएसु विविहेसु ।
भव सय सहस्स दुलहं, न मुणंति गयंपि नियजम्मं ॥६३॥

अर्थ : विविध उद्भट रूपों में आसक्त तथा विषयों की परतंत्रता से पीड़ित जीव लाखों जन्मों में दुर्लभ ऐसे अपने गये हुए जन्म को भी नहीं देखते हैं ॥६३॥

चिट्ठंति विसयविवसा, मुत्तुं लज्जंपि के वि गयसंका ।
न गणंति के वि मरणं, विसयंकुस सल्लिया जीवा ॥६४॥

अर्थ : कई जीव निःशंक और निर्लज्ज बनकर विषयों में आसक्त होकर रहते हैं । विषय रूपी अंकुश से शल्य वाले बने जीव मृत्यु को भी नहीं गिनते हैं ॥६४॥

विसयवसेणं जीवा, जिणधम्मं हारिऊण हा नरयं ।
वच्चंति जहा-चित्तय निवारिओ बंभदत्तनिवो ॥६५॥

अर्थ : दुःख की बात है कि विषय के वश बने हुए जीव जिनधर्म को हारकर नरक में चले जाते हैं, जैसे चित्रक मुनि के द्वारा रोकने पर भी ब्रह्मदत्त राजा मरकर नरक में गया ॥६५॥

धी धी ताण नराणं, जे जिणवयणामयं पि मोत्तूणं ।
चउ गइ विडंबणकरं, पिअंति विसयासवं घोरं ॥६६॥

अर्थ : उन पुरुषों को धिक्कार हो, जो जिनवचन रूपी अमृत को छोड़कर चार गति में विडंबना करानेवाली घोर विषय रूपी मदिरा का पान करते हैं ॥६६॥

मरणे वि दीणवयणं, माणधरा जे नरा न जंपंति ।
ते वि हु कुणंति लल्लिं, बालाणं नेहगहगहिला ॥६७॥

अर्थ : अभिमान को धारण करनेवाले कई लोग मौत आने पर भी दीन वचन नहीं बोलते हैं, परन्तु वे भी स्नेह रूपी ग्रह से पागल बने हुए स्त्रियों से रंक की तरह प्रार्थना करते हैं ॥६७॥

सक्को वि नेव खंडइ, माहप्पमडुप्फुरं जए जेसिं ।
ते वि नरा नारीहिं, कराविया नियय दासत्तं ॥६८॥

अर्थ : इस दुनिया में जिन पुरुषों के माहात्म्य के गर्व को इन्द्र भी खण्डित नहीं कर सकता, ऐसे पुरुष भी नारी द्वारा दास बनाए जाते हैं ॥६८॥

जउनंदणो महप्पा, जिणभाया वयधरो चरमदेहो ।
रहनेमि राइमई-रायमई कासि ही विसया ॥६९॥

अर्थ : यदुनंदन, महात्मा, नेमिनाथ प्रभु के छोटे भाई, व्रतधारी चरमशरीरी ऐसे रथनेमि ने भी राजीमती के विषय में रागबुद्धि की । वास्तव में ये विषय दुर्लंघ्य हैं ॥६९॥

मयण पवणेण, जइ तारिसा वि सुरसेल निच्चला चलिआ ।
ता पक्क पत्त सत्ताण, इयर सत्ताण का वत्ता ? ॥७०॥

अर्थ : मेरु पर्वत के समान निश्चल मन वाले भी काम रूपी पवन से विचलित हो जाते हैं तो पके हुए पत्ते जैसे हीन सत्त्ववाले प्राणियों की क्या बात करें ? ॥७०॥

जिप्पंति सुहेण चिय, हरि-करि-सप्पाइणो महाकूरो ।
इक्कुच्चि दुज्जेओ, कामो कय-सिवसुहविरामो ॥७१॥

अर्थ : महाक्रूर ऐसे सिंह, हाथी, सर्प आदि को सुखपूर्वक जीता जा सकता है, परन्तु मोक्ष-सुख में बाधाकारक काम ही दुर्जेय है ॥७१॥

विसमा विसय पिवासा, अणाइ भव भावणाइ जीवाणं ।
अइ दुज्जे याणि य, इंदियाइं तह चंचलं चित्तं ॥७२॥

अर्थ : अनादिकाल से अभ्यास होने के कारण जीवों की विषयपिपासा बडी विचित्र है । ये इन्द्रियाँ अति दुर्जेय हैं और चित्त अत्यन्त ही चंचल है ॥७२॥

कलमल अरइ अभुक्खा, वाही-दाहाइ-विविह दुक्खाइं ।
मरणं पि हु विरहाइसु, संपज्जइ काम-तविआणं ॥७३॥

अर्थ : कलमल, अरति, भोजन की अरुचि, व्याधि तथा दाह आदि विविध दुःख ही नहीं, काम में आसक्त जीव का विरह आदि होने पर मरण भी हो जाता है ॥७३॥

पंचिदिय विसय पसंगरेसि,
मण वयण काय नवि संवरेसि ।
तं वाहिसि कत्तिय गल पएसि,
जं अट्ठ कम्म नवि निज्जरेसि ॥७४॥

अर्थ : हे जीव ! तू मन, वचन और काया का संवर नहीं करता है और पाँच इन्द्रियों के विषयों में आसक्ति करता है ।

आठ प्रकार के कर्मों की निर्जरा भी नहीं करता है ।।७४।।

किं तुमंधोसि किं वासि धत्तूरिओ,
अहव किं संनिवाएण आउरिओ ।
अमय सम धम्म जं विसं व अवमन्नसे,
विसयविस विसम अमयं व बहुमन्नसे ।।७५।।

अर्थ : हे आत्मा ! क्या तुम अंधी हो अथवा तुमने धतूरे का भक्षण किया है ? अथवा संनिपात से ग्रस्त हो ! जिस कारण अमृत जैसे धर्म की अवगणना करते हो और विषय रूपी विष का अमृत की तरह बहुमान करते हो ? ।।७५।।

तुज्झ तुह नाण-विन्नाण-गुणडम्बरो,
जलण जालासु निवडंतु जिअ निब्भरो ।
पयइ वामेसु कामेसु जं रज्जसे,
जेहि पुण पुण वि नरयानले पच्चसे ।।७६।।

अर्थ : हे जीव ! तुम्हारा तप, ज्ञान, विज्ञान और गुणों का समूह आग की ज्वाला में गिरे, क्योंकि मोक्षमार्ग के प्रतिकूल ऐसे काम में तुम खुश होते हो, जिसके फलस्वरूप तुम नरक रूप अग्नि में पकाए जाओगे ।।७६।।

दहइ गोसीस सिरिखंड-छार-
क्कए छगल-गहणट्ठमेरावणं ।
विक्कए कप्पतरु तोडि एरण्ड सो वावए,
जुज्जि विसएहि मणुअत्तणं हारए ! ।।७७।।

अर्थ : विषयों में आसक्त होकर जो मनुष्यपने को हारता है, वह गोशीर्ष चंदन और श्रीखण्ड को जलाने का काम करता है, ऐरावत हाथी को बेचकर बकरा खरीद रहा है और कल्पवृक्ष को उखाड़कर एरंड को बो रहा है ॥७७॥

अधुवं जीविअं नच्चा, सिद्धिमग्गं विआणिआ ।
विणिअट्टिज्ज भोगेसु आउं परिमियमप्पणो ॥७८॥

अर्थ : हे जीव ! जीवन को क्षणिक जानकर, मुक्तिमार्ग को समझकर और अपने परिमित आयुष्य को जानकर भोगों से विराम ले ! ॥७८॥

सिवमग्ग संठिआण वि,
जह दुज्जेआ जियाण पुण विसया ।
तह अन्नं किं पि जए,
दुज्जेअं नत्थि सयले वि ॥७९॥

अर्थ : मोक्षमार्ग में अच्छी तरह से रहे हुए जीवों के लिए भी ये विषय दुर्जेय हैं, इस कारण इस संसार में सबसे अधिक दुर्जेय दूसरा कोई नहीं है ॥७९॥

सविडंकुब्भडरुवा दिट्ठा मोहेइ जा मणं इत्थी ।
आयहियं चिंतंता, दूरयरेणं परिहरंति ॥८०॥

अर्थ : उद्धत और अतिशय रूपवाली स्त्री नजर समक्ष आकर जब तक मन को मोहित न कर ले. तब तक आत्महित के इच्छुक उसका दूर से ही त्याग करते हैं ॥८०॥

सच्चं सुअं पि सीलं, विन्नाणं तह तवं पि वेरग्गं ।
वच्चइ खणेण सव्वं, विसयवसेणं जइणं वि ॥८१॥

अर्थ : विषयों के वश होने से साधु के भी सत्य, श्रुत, शील, विज्ञान और वैराग्य क्षणभर में नष्ट हो जाते हैं ॥८१॥

रे जीव ! स मइकप्पिय, निमेस सुहलालसो कहं मूढ ।
सासय सुहमसमतमं हारसि, ससिसोयरं च जसं ॥८२॥

अर्थ : हे जीव ! बुद्धि से कल्पित और निमेष (आँख की पलक) मात्र रहनेवाले विषयसुख में आसक्त होकर अनुपम और शाश्वत मोक्षसुख को और चंद्र समान उज्ज्वल यश को क्यों हार जाता है ? ॥८२॥

पज्जलिओ विसयग्गी, चरित्तसारं डहिज्ज कसिणं पि ।
सम्मत्तं पिअ विराहिय, अणंत संसारिअं कुज्जा ॥८३॥

अर्थ : प्रज्वलित हुई विषय रूपी अग्नि समस्त चारित्र के सार को भी जलाकर भस्मीभूत कर देती है । अरे ! सम्यक्त्व की भी विराधना कराकर आत्मा को अनंत संसारी बना देती है ॥८३॥

भीसण भवकांतारे, विसमा जीवाण विसयतिण्हाओ ।
जीए नडिआ चउदसपुव्वी वि रुलंति हु निग्गोए ॥८४॥

अर्थ : भीषण इस भव-जंगल में जीवों की विषय-तृष्णा बड़ी विचित्र है जिससे नचाए हुए चौदह पूर्वी भी निगोद में दुःखी होते हैं ॥८४॥

हा विसमा हा विसमा विसया, जीवाण जेहि पडिबद्धा ।
हिंडंति भवसमुद्दे, अणंतदुक्खाइं पावंता ॥८५॥

अर्थ : बहुत ही खेद की बात है, दुःख की बात है कि ये विषय अत्यन्त ही विषम हैं, जिनसे जुड़े हुए जीव संसार समुद्र में भटकते हैं और अनंत दुःख प्राप्त करते हैं ॥८५॥

माइंदजाल चवला, विसया जीवाण विज्जुतेअसमा ।
खणदिट्ठा खणनट्ठा ता, तेसिं को हु पडिबंधो ॥८६॥

अर्थ : जीवों के लिए ये विषय माया से रचे इन्द्रजाल की भाँति चपल हैं और आकाश में चमकती बीजली की भाँति क्षण में दिखाई देनेवाले और क्षण में नष्ट हो जाने के स्वभाववाले, हैं, इस कारण उन विषयों में प्रतिबद्धता-आसक्ति क्यों ? ॥८६॥

सत्तू विसं पिसाओ वेआलो, हुअवहो वि पज्जलिओ ।
तं न कुणइ जं कुविआ, कुणंति रागाइणो देहे ॥८७॥

अर्थ : शत्रु, विष, पिशाच, वेताल और प्रज्वलित अग्नि भी देह में जो नुकसान नहीं करते हैं, उससे भी अधिक नुकसान तीव्र बने राग आदि करते हैं ॥८७॥

जो रागाईण वसे, वसंमि जो सयल दुक्ख लक्खाणं ।
जस्स वसे रागाई, तस्स वसे सयलसुक्खाइं ॥८८॥

अर्थ : जो रागादि के वश में है, वह सभी लाखों दुःखों के वश में है और रागादि जिसके वश में है, उसके वश में

सभी सुख हैं ॥८८॥

केवल दुहनिम्मविए, पडिओ संसारसायरे जीवो ।
जं अणुहवइ किलेसं, तं आसवहेउअं सव्वं ॥८९॥

अर्थ : केवल दुःख से निर्मित इस संसार सागर में जीव जिन दुःखों का अनुभव करता है, उन सभी दुःखों का मुख्य कारण आस्रव ही है ॥८९॥

ही संसारे विहिणा, महिलारूवेण मंडिअं जालं ।
बज्झंति जत्थ मूढा, मणुआ तिरिआ सुरा असुरा ॥९०॥

अर्थ : दुःख की बात है कि विधाता ने स्त्री के रूप में इस संसार में एक ऐसा जाल रचा है, जिसमें मोह से मूढ़ बने मनुष्य, तिर्यंच, देव और दानव सभी फँस जाते हैं ॥९०॥

विसमा विसयभुअंगा, जेहिं डसिया जिआ भववणंमि ।
कीसंति दुहग्गीहिं, चुलसीई जोणिलक्खेसु ॥९१॥

अर्थ : विषय रूपी सर्प बड़े भयंकर हैं जिनसे डसे हुए जीव चौरासी लाख जीव योनि रूप इस भव वन में दुःख रूपी अग्नि से क्लेश पाते हैं ॥९१॥

संसारचार गिम्हे, विसयकुवाएण लुक्किया जीवा ।
हिअमहिअं अमुणंताऽणुहवंति अणंतदुक्खाइं ॥९२॥

अर्थ : संसार की जेल Jail में विषय रूपी लू से पीड़ित हित-अहित को नहीं जानने वाला यह जीव अनंत दुःखों का अनुभव करता है ॥९२॥

हा हा दुरंत दुट्ठा, विसयतुरंगा कुसिक्खिआ लोए ।
भीसण भवाडवीए, पाडंति जिआण मुद्धाणं ॥९३॥

अर्थ : खेद की बात है कि दुष्ट और कुशिक्षित ऐसे विषय रूपी घोड़े मुग्ध जीवों को भयंकर महाअटवी में डालते हैं ॥९३॥

विसय पिवासातत्ता, रत्ता नारीसु पंकिलसरंमि ।
दुहिआ दीणा खीणा, रुलंति जीवा भववणंमि ॥९४॥

अर्थ : विषय की प्यास से संतप्त, कीचड़वाले सरोवर की तरह नारी में आसक्त, दुःखी, दीन और क्षीण जीव भववन में भटकते हैं ॥९४॥

गुणकारिआइ घणियं, धिइरज्जुनिअंतिआइं तुह जीव ।
निअयाइं इंदिआइं, वल्लिनियत्ता तुरंगुव्व ॥९५॥

अर्थ : जिस प्रकार डोरी से नियंत्रित अश्व गुणकारी है, उसी प्रकार धृति रूपी डोरी से नियंत्रित इन्द्रियाँ भी अतिशय गुण करनेवाली हैं ॥९५॥

मण वयण काय जोगा, सुनिअत्ता ते वि गुणकरा हुंति ।
अनिअत्ता पुण भंजंति, मत्त करिणुव्व सीलवणं ॥९६॥

अर्थ : वश में किये गये मन, वचन और काया के योग भी गुणकारी होते हैं जबकि वश में नहीं रहे ये योग मदोन्मत्त हाथी की तरह चारित्र रूपी वन का नाश ही करते हैं ॥९६॥

जह जह दोसा विरमइ, जह जह विसएहिं होइ वेरग्गं ।
तह तह विन्नायव्वं, आसन्नं से य परमपयं ॥९७॥

अर्थ : ज्यों ज्यों रागादि दोष विराम पाते हैं, ज्यों-ज्यों विषयों से वैराग्य होता है, त्यों त्यों समझना चाहिए कि उस व्यक्ति का परमपद नजदीक है ॥९७॥

दुक्करमेएहिं कयं जेहिं, समत्थेहि जुव्वणत्थेहिं ।
भग्गं इंदिअसिन्नं, धिइपायारं विलग्गेहिं ॥९८॥

अर्थ : शरीर से समर्थ और यौवन वय होने पर भी जिन पुरुषों ने धैर्यरूप किले का आश्रय लेकर इन्द्रिय रूपी सैन्य को नष्ट कर दिया है । सचमुच...उन्होंने दुष्कर कार्य किया है ॥९८॥

ते धन्ना ताण नमो, दासोहं ताण संजमधराणं ।
अद्धच्छि-पिच्छरीओ, जाण न हिअए खुडुक्कंति ॥९९॥

अर्थ : वे पुरुष धन्य हैं उनको नमस्कार हो, उन संयमधरों का मैं दास हूँ जिनके हृदय में कटाक्ष से देखनेवाली स्त्रियाँ लेश मात्र भी खटकती नहीं हैं ॥९९॥

किं बहुणा जइ वंछसि, जीव तुमं सासयं सुहं अरुअं ।
ता पिअसु विसय विमुहो, संवेगरसायणं निच्चं ॥१००॥

अर्थ : ज्यादा क्या कहना ? हे जीव ! यदि तुम निराबाध शाश्वत सुख पाना चाहते हो तो विषयों से विमुख होकर हमेशा संवेग रूपी रसायन का पान करो ॥१००॥

: ज्ञान द्रव्य से लाभार्थी :

श्री मुनिसुव्रतस्वामी श्वेताम्बर मूर्ति पूजक जैन संघ

210/212, कोकरन बेसिन रोड,
विद्यासागर ओसवाल गार्डन,
कुरूक्कुपेट, चेन्नई 600021

BALARAM OFFSET
+91-9898034899